Volume 2; Issue 4
October to December 2025
E-ISSN: 3048-6742

Sanskriti-Samvahika
संस्कृति-संवाहिका

Peer Reviewed Indexed Refereed Journal

Quarterly Journal

Editor-in-Chief
Dr. Ashwini Devi

Sanskriti-Samvahika संस्कृति-संवाहिका

E-ISSN: 3048-6742

https://sanskritisamvahika.in

Volume 2; Issue 4; October to December, 2025; Page No. 30-36

Peer Reviewed, Indexed and Refereed Journal

आचार्य विश्वनाथ की दृष्टि में नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार का स्वरूप

प्रो. शुकदेव भोई

भूतपूर्व कुलपति

विनोद बिहारी महतो विश्वविद्यालय

आचार्य साहित्य विभाग

श्री लाल बहादुर शास्त्री

राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

शोध सार

दृश्य और श्रव्य के आधार पर आचार्यों ने साहित्य के दो प्रकार बताए हैं। इस वर्गीकरण के आधार पर न केवल रस की अनुभूति को समझा जा सकता है, बल्कि साहित्यिक अनुसंधान के लिए भी एक सुदृढ़ आधार प्राप्त होता है। संस्कृत साहित्य को लौकिक और अलौकिक दो मुख्य भागों में विभाजित किया गया है। लौकिक संस्कृत साहित्य में दो प्रमुख प्रकार माने गए हैं-**दृश्य काव्य** और **श्रव्य काव्य**। रसास्वादन और सौन्दर्य की दृष्टि से ये दोनों ही अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। फिर भी अभिनय और मंचन की विशेषता के कारण दृश्य काव्य अधिक लोकप्रिय माना जाता है।दृश्य काव्य में मुख्यतः नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क, वीथि और प्रहसन-ये **दस रूपक** माने गए हैं। इसके अतिरिक्त नाटक आदि के **अठारह उपरूपक** भी स्वीकार किए गए हैं। इसलिए प्रस्तुत शोध-पत्र में **"आचार्य विश्वनाथ की दृष्टि में** नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार का स्वरूप "विषय का स्पष्ट रूप से विश्लेषण और विवेचन किया जा रहा है।

रूपक का स्वरूप

रूपक साहित्य की एक प्रमुख विधा है। इसके दस मुख्य भेद बताए गए हैं-नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क, वीथि और प्रहसन।इन दस रूपकों के अतिरिक्त आचार्यों ने अठारह उपरूपकों का भी उल्लेख किया है, जैसे-नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हुल्लीश तथा भाणिका। इन सबका स्वरूप सामान्यतः नाटक के समान माना गया है।

नाटक का स्वरूप-

नाटक की कथा प्रायः इतिहास या पुराण में प्रसिद्ध होती है, जैसे रामायण और महाभारत की कथाएँ। नाटक में पाँच संधियाँ अनिवार्य होती हैं-मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निष्कृति। कथानक के विकास में ऐश्वर्य, विलास आदि गुण दिखाई देते हैं तथा सुख और दुःख दोनों का क्रमशः उदय होता रहता है। नाटक में सामान्यतः पाँच से दस तक अंक होते हैं। नाटक का नायक प्रख्यात वंश में उत्पन्न, धीरोदात्त, प्रतापी तथा दिव्य या दिव्य-मानुष गुणों से युक्त होता है। रस योजना के संदर्भ में नाटक में सामान्यतः एक प्रधान रस (अंगी रस) होता है-वह या तो श्रृंगार होता है या वीर। अन्य सभी रस सहायक रूप में (अंगरस) प्रयुक्त होते हैं और अंत में अद्भुत रस की योजना भी की जाती है।

गोपुच्छाग्र सिद्धान्त-

नाटक की रचना में एक विशेष सिद्धान्त **'गोपुच्छाग्र सिद्धान्त'** माना गया है। इसके अनुसार नाटक की संरचना ऐसी होनी चाहिए जैसे गाय की पूँछ आरम्भ में संक्षिप्त और अंत की ओर क्रमशः विस्तृत। कुछ आचार्यों के अनुसार कथानक के कुछ भाग मुखसन्धि में, कुछ प्रतिमुख में तथा अन्य भाग आगे की संधियों में क्रमशः पूर्ण होते हैं।

भरतमुनि ने भी नाट्यरचना में इस प्रकार की क्रमबद्धता का निर्देश दिया है। इसी प्रकार नाट्यदर्पण और धनंजय के दशरूपक ग्रन्थ में भी नाटक के निर्माण में नायक के गुण, कथानक की प्रसिद्धि, संधियों की योजना तथा रस-व्यवस्था के समुचित पालन का निर्देश दिया गया है। नाटक का नाम भी ऐसा होना चाहिए जो उसके कथ्य या उद्देश्य को स्पष्ट रूप से व्यक्त करे, जैसे-रामाभ्युदय आदि।

इस प्रकार नाटकरूपक की समुचित रचना के लिए प्रसिद्ध कथावस्तु, संधि-विन्यास, रस-संतुलन, पात्रों का यथोचित चित्रण तथा गोपुच्छाग्र सिद्धान्त के अनुसार कथानक की संरचना का उचित पालन आवश्यक माना गया है। आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार ये सभी तत्त्व पूर्ववर्ती आचार्यों की परंपरा के अनुरूप हैं, जिनके आधार पर नाटक साहित्य की एक पूर्ण और प्रभावशाली विधा के रूप में प्रतिष्ठित होता है।

प्रकरण रूपक का लक्षण-

आचार्य धनंजय ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ दशरूपक में प्रकरण रूपक का लक्षण इस प्रकार बताया है-

"अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंश्रयम्।

अमात्यविप्रवणिजामेकं कुर्याच्च नायकम्।

धीरप्रशान्तं सापायं धर्मकामार्थतत्परम्।

शेषं नाटकवत्सन्धिप्रवेशकरसादिकम्॥"

इस श्लोक के अनुसार प्रकरण में जो कथावस्तु होती है वह कवि द्वारा स्वयं कल्पित होती है तथा उसका आधार लोकजीवन होता है। अर्थात् इसकी कथा इतिहास या पुराण से ग्रहण की हुई नहीं होती, बल्कि सामाजिक जीवन से प्रेरित और कवि की कल्पना से निर्मित होती है। प्रकरण में नायक प्रायः अमात्य (मंत्री), विप्र (ब्राह्मण) अथवा वणिक (वैश्य) में से कोई एक होता है। यह नायक

स्वभाव से धैर्यवान, शांतचित्त तथा धर्म, अर्थ और काम इन त्रिवर्गों की प्राप्ति में प्रवृत्त रहने वाला होता है। साथ ही वह जीवन की विपत्तियों और संकटों से भी पूर्णतः मुक्त नहीं रहता। प्रकरण की अन्य रचनात्मक विशेषताएँ-जैसे संधि-विन्यास, प्रवेश तथा रस-योजना-प्रायः नाटक के समान ही होती हैं। इस प्रकार संरचना की दृष्टि से प्रकरण और नाटक में पर्याप्त साम्य दिखाई देता है, केवल कथावस्तु के स्रोत और नायक के सामाजिक स्वरूप में भिन्नता होती है।

नायिका का स्वरूप-

आचार्य धनंजय ने प्रकरण की नायिका के स्वरूप को भी स्पष्ट किया है-

"नायिका तु द्विधा नेतुः कुलस्त्री गणिका तथा।

क्वचिदेकैव कुलजा वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित्।

कृतवाभ्यन्तरा, बाह्या वेश्या नातिकमीजयोः॥"

इस कथन के अनुसार प्रकरण की नायिका दो प्रकार की मानी गई है-

1. **कुलस्त्री (कुलजा)**–जो किसी प्रतिष्ठित कुल में उत्पन्न हुई हो।
2. **गणिका या वेश्या**–जो समाज में स्वतंत्र या बहिर्मुखी जीवन जीने वाली स्त्री हो।

कभी-कभी प्रकरण में केवल कुलजा नायिका ही होती है, कहीं केवल गणिका का ही चित्रण मिलता है, और कुछ प्रकरणों में दोनों प्रकार की नायिकाएँ साथ-साथ भी दिखाई देती हैं। जब गणिका नायक के साथ घनिष्ठ अथवा अंतरंग रूप से संबद्ध होती है, तब उसे **"अभ्यन्तरा"** कहा जाता है। यदि वह बाहरी अथवा नवीन रूप से प्रवेश करने वाली स्त्री हो, तो उसे **"बाह्या"** कहा जाता है। इस प्रकार की वेश्याओं का प्रयोग विशेषतः नाटिका और मीजय आदि उपरूपकों में भी देखा जाता है। इस प्रकार प्रकरण रूपक सामाजिक जीवन से संबंधित कथानक, मध्यमवर्गीय नायक तथा विविध प्रकार की नायिकाओं के कारण संस्कृत नाट्यपरंपरा में एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण रूपक माना गया है।

भाण रूपक का स्वरूप-

आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रंथ साहित्यदर्पण में भाण रूपक का लक्षण स्पष्ट रूप से इस प्रकार बताया है—

"भाणः स्याद् धूर्तीचरितो नानावस्थान्तरात्मकः।

एकाङ्क एक एवात्र निपुणः पण्डितो विटः।

प्रकाशयेद्वा स्वानुभूतमितरेण वा,

संबोधनोक्तिप्रत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितः।

स भवेद्वीर-शृङ्गारी शौर्यसौभाग्यवर्णनैः।

तत्र तु वृत्तमुत्पाद्यं भारतीवृत्तिरिष्यते।

मुखनिर्वहणे सन्धी लास्याङ्गानि दशापि च॥"

इस परिभाषा के अनुसार **भाण** एक विशिष्ट नाट्यरूपक है, जो प्रायः **एकांकी (एक अंक वाला)** होता है। इसकी कथा प्रायः कवि द्वारा कल्पित होती है और यह इतिहास या पुराण पर आधारित नहीं होती। भाण का मुख्य पात्र **विट** होता है। विट एक रसिक, चतुर, धूर्त और विद्वान व्यक्ति होता है, जो अपनी बुद्धिमत्ता और वाक्चातुर्य के द्वारा पूरे नाटक को आगे बढ़ाता है। इस रूपक की विशेषता यह है कि मंच पर केवल यही एक पात्र उपस्थित होता है, किन्तु संवादों और संकेतों के माध्यम से वह अन्य पात्रों की उपस्थिति का आभास कराता है। भाण में विट कभी अपने स्वयं के अनुभवों को, तो कभी दूसरों के अनुभवों को कथन के रूप में प्रस्तुत करता है। वह संबोधन, प्रश्न और प्रत्युत्तर आदि को **आकाशभाषित** शैली में व्यक्त करता है। इस प्रकार दर्शकों को ऐसा अनुभव होता है मानो अनेक पात्र उपस्थित होकर परस्पर संवाद कर रहे हों। रस की दृष्टि से भाण में प्रायः **वीर और श्रृंगार रस** की प्रधानता होती है। शौर्य और सौभाग्य के वर्णन से इन रसों की अभिव्यक्ति होती है। रचना की दृष्टि से इसमें प्रायः **भारती वृत्ति** का प्रयोग अधिक होता है, यद्यपि कहीं-कहीं **कैशिकी वृत्ति** भी प्रयुक्त हो सकती है।

संरचनात्मक दृष्टि से भाण की कथा मुख्यतः **मुख और निर्वहण** इन दो संधियों से युक्त होती है। साथ ही इसमें **दस प्रकार के लास्याङ्गों** का भी प्रयोग किया जाता है, जिनसे इसकी शैली में हास्य, विनोद और रसिकता का विशेष संचार होता है। संस्कृत नाट्यपरंपरा में **लीलामधुकर भाण** को इस रूपक का एक उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है, जिसमें भाण के सभी प्रमुख लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। इस प्रकार आचार्य विश्वनाथ का भाण संबंधी विवेचन मूलतः दशरूपक के रचयिता आचार्य धनंजय के मत के अनुरूप ही है। भाण शैली एकांकी, अभिनयप्रधान, कल्पनाशील संवादों से युक्त तथा विनोदमय होती है, जो दर्शकों के मन में हास्य और सौन्दर्यबोध दोनों उत्पन्न करती है।

व्यायोग रूपक का स्वरूप-

आचार्य विश्वनाथ ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ साहित्यदर्पण में व्यायोग रूपक का लक्षण इस प्रकार बताया है

"ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंयुक्तः।

हीनो गर्भविमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रितः।

एकाङ्कश्च भवेदस्त्रीनिमित्तसमरोदयः।

कैशिकीवृत्तिरहितः प्रख्यातस्तत्र नायकः।

राजर्षिर्वा दिव्यो वा भवेद्वीरोद्धतश्च सः।

हास्य-शृङ्गार-शान्तेभ्य इतरेऽङ्गिनो रसाः॥"

इस परिभाषा के अनुसार **व्यायोग** नाट्यरूपक का एक प्रमुख प्रकार है। यह सामान्यतः **एक अंक वाला (एकांकी)** होता है। इसकी कथावस्तु प्रायः इतिहास या पुराणों में प्रसिद्ध घटनाओं पर आधारित होती है, जैसे रामायण और महाभारत में वर्णित प्रसंग।

व्यायोग में प्रायः **युद्ध या संग्राम का वर्णन** होता है, किन्तु यह युद्ध किसी स्त्री के कारण उत्पन्न नहीं होता। इस रूपक की एक विशेषता यह है कि इसमें **स्त्री पात्रों की संख्या बहुत कम होती है**, जबकि पुरुष पात्रों की संख्या अधिक होती है। इसलिए यह रूपक मुख्यतः वीरता, साहस और पुरुषार्थ के प्रदर्शन के लिए उपयुक्त माना जाता है। व्यायोग में **कैशिकी वृत्ति** का अभाव होता है, क्योंकि इसमें श्रृंगार रस का स्थान गौण या लगभग अनुपस्थित रहता है। इस रूपक का प्रमुख रस सामान्यतः **वीर रस** होता है। संरचनात्मक दृष्टि से इसमें **गर्भ संधि और विमर्श संधि का अभाव** रहता है, जिससे इसकी कथा अपेक्षाकृत सरल और संक्षिप्त रहती है। प्रायः इसमें केवल **मुख संधि और निर्वहण संधि** ही पाई जाती हैं।

व्यायोग का नायक प्रायः कोई **प्रसिद्ध वीर पुरुष** होता है-जैसे राजपुत्र, दिव्य नायक या धीरोदात्त वीर। यह नायक साहस, धैर्य और उदात्तता का प्रतीक होता है। रस योजना में हास्य, श्रृंगार और शान्त रसों को छोड़कर अन्य कोई रस अंगी रूप में स्वीकार किया जाता है, जो प्रायः वीर रस ही होता है। अतः व्यायोग का मूल उद्देश्य वीरभाव का प्रभावपूर्ण प्रदर्शन करना है। संस्कृत नाटककार भास के नाटक **"सौगन्धिकाहरण"** को व्यायोग रूपक का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है। इसमें भीमसेन द्वारा सौगन्धिक पुष्प प्राप्त करने के प्रसंग के माध्यम से युद्ध और वीरता का अत्यंत प्रभावशाली वर्णन किया गया है, जिसमें वीर रस की प्रधानता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

इसी प्रकार दशरूपक के रचयिता आचार्य धनंजय ने भी (३/६०–६१) श्लोकों में व्यायोग के इन्हीं लक्षणों को स्वीकार किया है। उनके अनुसार व्यायोग एकांकी, प्रसिद्ध कथावस्तु से युक्त, पुरुषप्रधान, कैशिकी वृत्ति से रहित तथा वीर रस प्रधान नाट्यरूपक होता है।

समवकार रूपक का स्वरूप-

आचार्य विश्वनाथ ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ साहित्यदर्पण में समवकार रूपक का लक्षण इस प्रकार बताया है-

"वृत्तं समवकारे तु ख्यातं देवसुराश्रयम्।
संध्यो निविमर्शास्तु त्रयोऽङ्कास्तत्र चादिमे॥
संधी द्वावन्त्ययोस्तद्वदेक एको भवेत्पुनः।
नायका द्वादशादात्ताः प्रख्याता देवमानवाः॥
फलं पृथक् पृथक्तेषां वीरमुख्योऽखिलो रसः।
वृत्तयो मन्दकैशिकयो नात्र बिन्दुप्रवेशकौ॥
वीथ्यङ्गानि च तत्र स्युस्तथालाभं त्रयोदश।
गायत्र्युष्णिङ्मुखान्यत्र छन्दांसि विविधानि च॥
त्रिशृङ्गारस्त्रिकपटः कार्यश्चायं त्रिविद्रवः।

वस्तु द्वादशनालीभिर्भानप्याद्यं प्रथमाङ्कगम् ।

द्वितीयाङ्के तिसृभिर्दाभ्याङ्कस्तृतीयकः ॥"

इस परिभाषा के अनुसार समवकार एक विशिष्ट नाट्यरूपक है, जिसकी कथावस्तु प्रायः प्रसिद्ध पौराणिक या ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित होती है और विशेष रूप से देवताओं तथा असुरों से संबंधित प्रसंगों का वर्णन करती है। समवकार की रचना सामान्यतः तीन अंकों में होती है। इसमें विमर्श संधि का अभाव रहता है और कुल चार संधियों का प्रयोग किया जाता है। पहले दो अंकों में दो-दो संधियाँ होती हैं, जबकि तीसरे अंक में केवल एक संधि रहती है। इस रूपक की एक विशेषता यह है कि इसमें बारह नायक होते हैं। ये नायक प्रख्यात देवता या मनुष्य होते हैं और सभी धीरोदात्त स्वभाव के माने जाते हैं। प्रत्येक नायक किसी न किसी विशिष्ट फल की प्राप्ति के उद्देश्य से कार्य करता है। रस की दृष्टि से वीर रस इस रूपक का मुख्य (अंगी) रस होता है, जबकि अन्य रस सहायक रूप में प्रयुक्त होते हैं। वृत्ति की दृष्टि से इसमें कैशिकी वृत्ति का प्रयोग नहीं होता, बल्कि भारती, सात्वती और आरभटी वृत्तियाँ प्रयुक्त होती हैं। समवकार में बिन्दु और प्रवेशक का भी प्रयोग नहीं किया जाता। इसके अतिरिक्त इस रूपक में वीथि के तेरह अंगों का प्रयोग यथासंभव किया जाता है। छन्दों की दृष्टि से गायत्री और उष्णिक छन्दों की प्रधानता रहती है, यद्यपि अन्य विविध छन्दों का भी प्रयोग संभव है। समवकार में कुछ विशेष अपेक्षाएँ भी बताई गई हैं

- **त्रि-शृंगार**-तीन प्रकार की नायिकाओं का प्रयोग
- **त्रि-कपट**-तीन प्रकार की युक्तियों का प्रयोग
- **त्रि-विद्रव**-घटनाओं की गति से संबंधित तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ

काल-विभाजन की दृष्टि से भी समवकार का स्वरूप विशेष है-

- **प्रथम अंक** की कथा एक दिन-रात (२४ घटी) के भीतर सम्पन्न होती है।
- **द्वितीय अंक** की कथा लगभग आठ घटी में पूर्ण होती है।
- **तृतीय अंक** की कथा चार घटी में समाप्त होती है।

उदाहरणस्वरुप समवकार रूपक का प्रमुख उदाहरण "समुद्रमन्थन" माना जाता है, जिसमें देवताओं और असुरों द्वारा समुद्र मंथन की पौराणिक कथा का वर्णन किया गया है। इस कथा में समवकार के सभी लक्षण देवासुर प्रसंग, अनेक नायक, वीर रस की प्रधानता और विशिष्ट संरचना-स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। इस प्रकार समवकार रूपक संस्कृत नाट्यपरंपरा में एक विस्तृत और बहु-पात्रप्रधान नाट्यरचना के रूप में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

निष्कर्ष-

संस्कृत साहित्य में आचार्यों ने दृश्य और श्रव्य के आधार पर काव्य का सुव्यवस्थित वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, जो न केवल काव्यरूपों की प्रकृति को समझने में सहायक है, बल्कि साहित्यिक अध्ययन और अनुसंधान के लिए भी एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान

करता है। दृश्य काव्य विशेषतः नाट्यपरंपरा से संबद्ध होने के कारण अभिनय, संवाद, पात्र-चित्रण तथा रसाभिव्यक्ति के माध्यम से अधिक प्रभावशाली और लोकप्रिय माना गया है। आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रंथ साहित्यदर्पण में दृश्य काव्य के अंतर्गत विभिन्न रूपकों का व्यवस्थित निरूपण किया है। नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग तथा समवकार आदि रूपकों के माध्यम से उन्होंने नाट्यरचना के विविध आयामों को स्पष्ट किया है। इन रूपकों की कथावस्तु, नायक-नायिका की प्रकृति, रस-योजना तथा संरचनात्मक विशेषताओं में भिन्नता होते हुए भी सभी का उद्देश्य दर्शकों में रसोत्पत्ति और सौन्दर्यबोध की अनुभूति कराना है।

इस प्रकार दृश्य काव्य की यह परंपरा संस्कृत साहित्य की समृद्ध नाट्यधारा को प्रकट करती है, जिसमें विविध रूपकों के माध्यम से सामाजिक, ऐतिहासिक तथा पौराणिक विषयों का प्रभावपूर्ण प्रस्तुतीकरण किया गया है। अतः आचार्य विश्वनाथ की दृष्टि में इन रूपकों का अध्ययन संस्कृत नाट्यपरंपरा की संरचना, स्वरूप और सौन्दर्य को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।